खोज

ऐसे हुआ ब्लेड का आविष्कार

शेविंग के इतिहास में 19वीं सदी का दौर एक बड़ा बदलाव लेकर आया। 1800 के मध्य में पुरुषों के बीच क्लीन शेव के साथ मूंछें रखने का ट्रेंड तेजी से लोकप्रिय होने लगा, लेकिन उस समय आज जैसे आधुनिक ब्लेड उपलब्ध नहीं थे। शुरुआती दौर में लोग कांसे या धातु की गोल, तेज वस्तुओं से शेव करते थे। बाद में 1890 के आसपास स्ट्रेट रेजर का चलन बढ़ा, जिन्हें टिकाऊ और प्रभावी माना जाता था, लेकिन इन्हें इस्तेमाल करना आसान नहीं था और धार बार-बार तेज करनी पड़ती थी।

इसी समस्या ने अमेरिकी आविष्कारक किंग कैंप जिलेट को नया समाधान खोजने के लिए प्रेरित किया। पेशे से ट्रैवलिंग सेल्समैन रहे जिलेट को 1895 में शेविंग करते समय यह अहसास हुआ कि रेजर की धार जल्दी खत्म हो जाती है। उन्होंने ऐसा पतला, सस्ता और आसानी से बदला जा सकने वाला ब्लेड बनाने का विचार किया। शुरुआत में मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी के वैज्ञानिकों ने इसे असंभव माना, लेकिन बाद में आविष्कारक विलियम निकर्सन की मदद से कई वर्षों की मेहनत के बाद यह सपना साकार हुआ। 1903 में पहला सेफ्टी रेजर बाजार में आया और 1904 में इसका पेटेंट कराया गया। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान कंपनी ने अमेरिकी सैनिकों को शेविंग किट उपलब्ध कराई, जिससे इसकी लोकप्रियता तेजी से बढ़ी। सैनिकों द्वारा लाखों ब्लेड और रेजर के उपयोग ने कंपनी को वैश्विक पहचान दिलाई। आगे चलकर जिलेट ने मल्टी-ब्लेड तकनीक, डिस्पोजेबल रेजर और आधुनिक ग्रूमिंग प्रोडक्ट्स के जरिए बाजार में अपनी मजबूत पकड़ बनाई। 2005 में प्रॉक्टर एंड गैंबल द्वारा अधिग्रहण के बाद यह ब्रांड आज भी शेविंग इंडस्ट्री का अग्रणी नाम बना हुआ है।

वैज्ञानिक के बारे में

किंग कैंप जिलेट का जन्म 5 जनवरी 1855 को अमेरिका के विस्कॉन्सिन राज्य में हुआ था। उनके पिता एक हार्डवेयर व्यापारी थे, जिससे उन्हें बचपन से ही व्यवसाय और तकनीक में रुचि मिली। युवावस्था में वे एक ट्रैवलिंग सेल्समैन के रूप में काम करते थे, जिसने उन्हें लोगों की जरूरतों को समझने का अवसर दिया। वे केवल आविष्कारक ही नहीं, बल्कि एक विचारक भी थे और समाज सुधार से जुड़े विचार रखते थे। उन्होंने "The Human Drift" नामक पुस्तक भी लिखी। 1932 में उनका निधन हुआ, लेकिन उनके आविष्कार ने उन्हें अमर बना दिया।

गिद्धों की अद्भुत जीवन रक्षा तकनीक

गिद्ध एक ऐसा पक्षी है, जिसे अक्सर उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है, लेकिन वही प्रकृति का सबसे कुशल सफाईकर्मी है। अपनी अद्भुत पाचन शक्ति, अनोखी जीवन रक्षा तकनीक और सामाजिक व्यवहार से गिद्ध पर्यावरण को स्वच्छ और संतुलित बनाए रखते हैं। आसमान में अथाह ऊंचाइयों पर हवा में तैरते, धरती पर पसरे सन्नाटे के साक्षी गिद्धों को देखकर मन में आकर्षण नहीं, बल्कि एक प्रकार की उपेक्षा का भाव ही पैदा होता है। उनका गंजा सिर, भारी सशक्त चोंच और मृत जीवों पर निर्भर जीवनशैली उन्हें 'अप्रिय' पक्षियों की पंक्ति में खड़ा कर देती है। किंतु यदि हम प्रकृति को उसके वास्तविक स्वरूप में समझने का प्रयास करें, तो यही गिद्ध हमें पृथ्वी के सबसे महत्वपूर्ण और कुशल सफाईकर्मी के रूप में दिखाई देते हैं, ऐसे प्रहरी जो बिना किसी पहचान या प्रशंसा के हमारे पर्यावरण को संतुलित बनाए रखने में सहायक होते हैं।

डॉ. कैलाश चन्द सैनी
वन्यजीव लेखक, जयपुर

जटायु और संपाती का गौरव

भारतीय संस्कृति और रामायण के अमर प्रसंगों में गिद्ध केवल पक्षी नहीं, बल्कि उच्च आदर्शों और त्याग के प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

शौर्य और त्याग का प्रतीक

जब रावण माता सीता का हरण कर ले जा रहा था, तब वृद्ध जटायु ने ही अपनी क्षीण होती शक्ति की परवाह किए बिना उसका मार्ग रोका और वीरतापूर्वक युद्ध किया। यह केवल संघर्ष नहीं, बल्कि नारी-सम्मान की रक्षा का अद्वितीय उदाहरण था। भगवान राम द्वारा जटायु का अंतिम संस्कार स्वयं करना, इस पक्षी की श्रेष्ठता और त्याग का प्रमाण है। संपाती दूरदृष्टि का अद्भुत उदाहरण जटायु के ज्येष्ठ भ्राता संपाती ने अपनी असाधारण तीक्ष्ण दृष्टि से हजारों मील दूर लंका में सीता जी की उपस्थिति को पहचान लिया था। यह प्रसंग गिद्धों की उस विलक्षण दृष्टि-क्षमता की ओर संकेत करता है, जिसे आज का आधुनिक विज्ञान भी स्वीकार करता है। गिद्ध 3-4 किलोमीटर की ऊंचाई से भी धरती पर पड़े 3 फुट के मवेशी को भी देख लेता है।

पैरों पर विसर्जन: जीवन बचाने की एक अनूठी तकनीक

पहली नजर में यह व्यवहार विचित्र लगता है कि गिद्ध अपने ही पैरों पर मूत्र विसर्जन करते हैं, लेकिन यह कोई असामान्य आदत नहीं, बल्कि उनके लिए एक अत्यंत उपयोगी वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसे यूरोहाइड्रोसिस कहा जाता है। गिद्धों के पास पसीने नि:सृत करने वाली ग्रंथियां नहीं होतीं। भीषण गर्मी में, जब अधिकांश जीव पसीने के माध्यम से शरीर का तापमान नियंत्रित करते हैं, ऐसे में पैरों पर तरल का विसर्जन 'वाष्पीकरण द्वारा शीतलन' का कार्य करता है, जो उनके शरीर को ठंडा रखता है।

प्राकृतिक सैनिटाइजर

सड़े-गले मांस के संपर्क में रहने से उनके पैरों पर अनेक हानिकारक जीवाणु चिपक जाते हैं। इनके मूत्र में उपस्थित अम्लीय तत्व इन जीवाणुओं को नष्ट कर देते हैं, जिससे संक्रमण का खतरा समाप्त हो जाता है। यह प्रक्रिया उन्हें एक प्रकार की प्राकृतिक रोग-प्रतिरोधक सुरक्षा प्रदान करती है।

सामाजिक सूचना तंत्र और ऊंची उड़ान

गिद्धों की उड़ान अद्वितीय है। वे हवा की गर्म धाराओं का उपयोग करते हुए बिना पंख फड़फड़ाए घंटों तक आकाश में मंडराते रहते हैं, जिससे ऊर्जा की अत्यधिक बचत होती है। इनका सामाजिक व्यवहार भी अत्यंत रोचक है। एक गिद्ध जब मृत पशु देखता है, तो किसी ऊंचे वृक्ष पर बैठकर विशेष प्रकार से 'चैंव-चैंव' की आवाज निकालते हुए गर्दन घुमाकर कुछ संकेत करता है। इस संकेत में यह सूचना होती है कि मरे हुए पशु की किस्म, स्थान और कितने गिद्धों के लिए भोजन उपलब्ध है। इस आवाज को जो भी दूसरा गिद्ध सुनता है, वह उसी तरह का संकेत अपने पीछे वाले गिद्धों के लिए भी कर देता है। भोजन की मात्रा के अनुसार गिद्ध एकत्र होने पर सबसे पहले खबर देने वाले को आगे चलने का सम्मान देते हैं, क्योंकि उसे उस पशु के मांस का सबसे नरम भाग खाने का अधिकार होता है। ऐसी सामाजिकता और न्यायप्रिय उदारता यदि मनुष्यों में भी होती, तो समाज में लूट-खसोट न होती।

सुदृढ़ पाचन शक्ति: प्रकृति की जैविक प्रयोगशाला

गिद्धों का पाचन तंत्र किसी चमत्कार से कम नहीं। उनके पेट में मौजूद प्रबल अम्ल एंथ्रैक्स, हैजा और बोटुलिज्म जैसे खतरनाक बैक्टीरिया को भी नष्ट कर देता है। वास्तव में, वे प्रकृति की जैविक प्रयोगशाला हैं, जो मृत शवों का निस्तारण कर पर्यावरण को संक्रमण मुक्त बनाए रखते हैं।

पारिस्थितिकी संकट और संरक्षण

भारत में एक समय गिद्धों की संख्या में तीव्र गिरावट देखी गई, जिसका मुख्य कारण पशुओं में प्रयुक्त दवा दर्द निवारक दवा डाइक्लोफेनाक था। इस दवा के अवशेष वाले मृत पशुओं को खाने से गिद्धों की मृत्यु होने लगी। गिद्धों की कमी से पर्यावरण में सड़न और आवारा कुत्तों की संख्या बढ़ी, जिससे यह स्पष्ट हो गया कि वे केवल एक पक्षी नहीं, बल्कि एक संपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र के अभिन्न रक्षक हैं।

उपेक्षा से उपयोगिता की ओर

गिद्ध हमें यह गहरा संदेश देते हैं कि प्रकृति में कोई भी जीव अनावश्यक नहीं होता। उनका हर व्यवहार चाहे वह कितना ही असामान्य क्यों न लगे जीवन के संतुलन के लिए जरूरी होता है। वे गंदगी के बीच रहकर भी संसार को स्वच्छ बनाते हैं और मृत्यु के बीच रहकर भी जीवन की रक्षा करते हैं। वास्तव में, गिद्ध केवल सफाईकर्मी नहीं, बल्कि प्रकृति के ऐसे नेकनीयत रखने वाले नायक हैं, जो बिना किसी पहचान के हमारी पृथ्वी को सुरक्षित और पर्यावरण को स्वस्थ बनाए रखने में निरंतर लगे हुए हैं।

मरीन लाइफ

जाइंट आइसोपोड : गहरे समुद्र का अद्भुत सफाईकर्मी

विशाल आइसोपोड (Giant Isopod) समुद्र की गहराइयों में पाया जाने वाला एक बेहद अनोखा और रहस्यमय जीव है, जो देखने में जमीन पर पाए जाने वाले कीड़ों या जूं जैसे जीवों से मिलता-जुलता लगता है, लेकिन आकार में उनसे कहीं अधिक बड़ा होता है। सामान्यतः जहां स्थलीय कीट छोटे होते हैं, वहीं यह समुद्री जीव लगभग 16 इंच तक लंबा हो सकता है, जो इसे अपने वर्ग के जीवों में खास बनाता है। यह मुख्य रूप से समुद्र तल यानी डीप-सी (Deep Sea) में रहता है, जहां सूरज की रोशनी तक नहीं पहुंच पाती और तापमान बेहद कम होता है। इतनी कठिन परिस्थितियों में जीवित रहना ही इसे एक अद्भुत जीव बनाता है। विशाल आइसोपोड का शरीर कठोर खोल से ढका होता है, जो इसे बाहरी खतरों से

बचाता है और इसके कई पैर होते हैं, जिनकी मदद से यह समुद्र की सतह पर धीरे-धीरे चलता है। यह जीव मांसाहारी प्रवृत्ति का होता है, लेकिन खुद शिकार करने की बजाय यह अधिकतर समुद्र में मरे हुए जीवों को खाकर जीवित रहता है, जिसे "स्कैवेंजिंग" कहा जाता है। समुद्र की गहराइयों में भोजन की कमी होती है, इसलिए यह जीव लंबे समय तक बिना खाए भी रह सकता है और जब इसे भोजन मिलता है, तो यह एक साथ अधिक मात्रा में खा लेता है।

इसकी सूंघने की क्षमता बहुत तेज होती है, जिससे यह दूर से ही मरे हुए जीवों का पता लगा लेता है। वैज्ञानिकों के लिए यह जीव खास रुचि का विषय है, क्योंकि यह हमें समुद्र के गहरे और कम खोजे गए हिस्सों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी देता है। इसके अध्ययन से यह भी पता चलता है कि पृथ्वी पर जीवन कितनी कठिन परिस्थितियों में भी संभव है। विशाल आइसोपोड न केवल समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, बल्कि यह प्रकृति की अद्भुत विविधता और अनुकूलन क्षमता का भी बेहतरीन उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसके अलावा, यह जीव अत्यधिक दबाव (pressure) वाली परिस्थितियों में भी आसानी से जीवित रह सकता है, जहां सामान्य जीवों का टिक पाना कठिन होता है। इसकी धीमी जीवनशैली और ऊर्जा बचाने की क्षमता इसे लंबे समय तक जीवित रहने में मदद करती है। वैज्ञानिकों का मानना है कि यह जीव लाखों वर्षों से लगभग उसी रूप में मौजूद है, जिससे यह 'जीवित जीवाश्म' (living fossil) जैसा प्रतीत होता है। गहरे समुद्र में इसकी उपस्थिति यह दर्शाती है कि प्रकृति ने हर परिस्थिति के अनुसार जीवन को ढालने की अद्भुत क्षमता विकसित की है।

वैज्ञानिक फैक्ट

क्यों आता है हमें पसीना

पसीना आना एक सामान्य शारीरिक प्रक्रिया है, जो हमारे शरीर को स्वस्थ और संतुलित बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जब शरीर का तापमान बढ़ता है, तो उसे नियंत्रित करने के लिए शरीर पसीना छोड़ता है। यह प्रक्रिया शरीर की प्राकृतिक कूलिंग सिस्टम की तरह काम करती है।

मानव शरीर में लाखों स्वेद ग्रंथियां होती हैं, जो त्वचा के माध्यम से पसीना बाहर निकालती हैं। जब हम गर्म वातावरण में होते हैं, व्यायाम करते हैं या तनाव महसूस करते हैं, तो हमारा मस्तिष्क शरीर को ठंडा रखने के लिए इन ग्रंथियों को सक्रिय कर देता है। पसीना त्वचा पर आकर वाष्पित होता है, जिससे शरीर का तापमान कम हो जाता है। सौभाग्य से, शरीर में तापमान को महसूस करने और नियंत्रित करने के लिए बहुत ही परिष्कृत तंत्र मौजूद हैं। जैसे ही आपके शरीर का आंतरिक तापमान बढ़ने लगता है, आपका हाइपोथैलेमस (आपके मस्तिष्क का एक छोटा सा क्षेत्र) आपके पूरे शरीर में फैली हुई एक्राइन पसीना ग्रंथियों को बताता है कि पसीना उत्पन्न करके आपको ठंडा करने का समय आ गया है।

हालांकि शरीर को ठंडा करना सिर्फ पसीने के टपकने जितना आसान नहीं है। इस प्रक्रिया के लिए पसीने का कुछ हिस्सा त्वचा से वाष्पित होना जरूरी है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि पसीने के जरिए शरीर को ठंडा करने की प्रक्रिया भौतिकी के एक सिद्धांत पर आधारित है, जिसे 'वाष्पीकरण की ऊष्मा' कहा जाता है। पसीने को त्वचा से वाष्पित करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है और वह ऊर्जा ऊष्मा है। शरीर की अतिरिक्त ऊष्मा पसीने की बूंदों को वाष्प में परिवर्तित करने में उपयोग होने लगती है, जिससे आपको ठंडक महसूस होने लगती है।

पसीना आने के कई कारण हो सकते हैं। सबसे आम कारण है गर्मी या शारीरिक गतिविधि। इसके अलावा, भावनात्मक स्थिति जैसे डर, घबराहट या तनाव भी पसीना बढ़ा सकते हैं। आपने अक्सर देखा होगा कि परीक्षा या इंटरव्यू के समय हाथों में पसीना आने लगता है। यह भी शरीर की प्रतिक्रिया ही है। पसीने का एक और महत्वपूर्ण काम शरीर से विषैले तत्वों (toxins) को बाहर निकालना है। पसीने में ज्यादातर पानी और नमक होता है, लेकिन यह शरीर की सफाई में भी मदद करता है। कुछ लोगों को जरूरत से ज्यादा पसीना आता है, जिसे 'हाइपरहाइड्रोसिस' कहा जाता है। यह एक मेडिकल स्थिति हो सकती है, जिसमें व्यक्ति को बिना किसी खास कारण के भी अत्यधिक पसीना आता है। ऐसे मामलों में डॉक्टर से सलाह लेना जरूरी होता है। पसीने से कभी-कभी बदबू भी आती है, जो सीधे पसीने की वजह से नहीं, बल्कि त्वचा पर मौजूद बैक्टीरिया के कारण होती है। जब ये बैक्टीरिया पसीने के साथ प्रतिक्रिया करते हैं, तब गंध उत्पन्न होती है। पसीना आना कोई बीमारी नहीं, बल्कि शरीर की एक जरूरी प्रक्रिया है। यह हमें गर्मी से बचाता है, शरीर का तापमान नियंत्रित रखता है और स्वास्थ्य बनाए रखने में सहायक होता है। इसलिए पसीने को लेकर घबराने की जरूरत नहीं, बल्कि इसे शरीर की एक प्राकृतिक और लाभदायक क्रिया के रूप में समझना चाहिए।

इलाज में सहायक मस्तिष्क कोशिकाओं की आणविक क्रियाएं

आसान नहीं है दर्द को दूर करना। बिछुड़ने के गम और कारोबारी घाटे से अथवा चोट या घाव लगने के दर्द की न्यूरो-फिजियोलॉजी को समझना आसान बिल्कुल नहीं है। आयुर्वेद और भारत की लोकचिकित्सा में बहुत से दर्द निवारक तो बताए गए हैं, लेकिन अवसाद और इससे पैदा दर्द की मॉलिक्यूलर बायोलॉजी बिल्कुल अलग है। मध्यकाल में युद्धों के दौरान लगे घावों से पैदा दर्द के अहसास को दूर करने के लिए योद्धा लोग अक्सर अफीम को साथ रखते थे ताकि वे इसकी कुछ मात्रा के सेवन एक दवा के रूप में कर सकें। इनकी फार्माकोलॉजी और रासायनिक एवं इनके एक्टिंग मैकेनिज्म पर भी बहुत काम हुआ है। लोगों को अफीम के बारे में अमूमन मालूमात हैं, जो एक दर्दनिवारक नशीला पदार्थ है। शरीर विज्ञानियों ने शरीर के भीतर ही छिपे हुए कुदरती दर्दनिवारकों (बॉडीज ऑन नेचुरल ऑपिओइड्स) का पता लगाया है। इन सबको एंटागोनिस्ट कहा जाता है, जो मॉडर्न फार्माकोलॉजी की एक टर्म है। बात अफीमचियों द्वारा नशे के रूप में अफीम का सेवन करने की नहीं है। मॉडर्न क्लिनिकल फार्माकोलॉजी एक और विधा है, जिसमें दवा के असर को जीवों में देखा जाता है। सभी जीव इन कुदरती या शरीर द्वारा बनाए गए दर्द निवारकों को सिंथेसायिज करके लैब में बनाकर देखा जाता और फार्मूला सिद्ध होने के बाद इसे ड्रग इंडस्ट्री द्वारा बड़े स्तर पर एक प्रोडक्ट या दवा के रूप में उपलब्ध कराया जा सकता है। गोली या पेय के प्रति सभी लोग एक जैसी प्रतिक्रिया नहीं देते। दर्द निवारक की अधिक मात्रा, जैसे कि एस्पिरिन में मौजूद एक्टिव पुनर्प्राप्त रसायन एसिटिल सैलीसाइलिक एसिड जिसे सैलीसाइलिक एसिड से हासिल किया जाता है। इसके मॉलिक्यूल प्रोस्टाग्लैंडीन के स्राव को रोकते हैं, जो कि दर्द की अनुभूति के लिए एक मध्यस्थ कुदरती द्रव है।

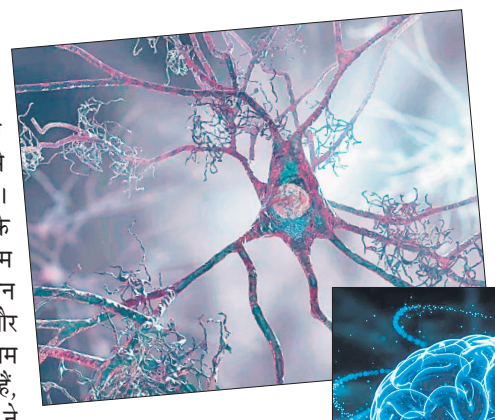

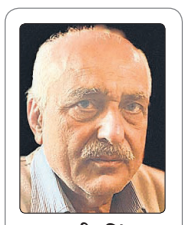

रणबीर सिंह
विज्ञान लेखक

प्रोस्टाग्लैंडिन लिपिड यौगिक होते हैं, जो ऊतक क्षति या संक्रमण वाले स्थानों पर स्थानीय रूप से उत्पन्न होते हैं। ये रासायनिक संदेशवाहक के रूप में कार्य करते हैं और सूजन, रक्त प्रवाह और प्रजनन जैसी शारीरिक प्रक्रियाओं को नियंत्रित करते हैं।

पारंपरिक हार्मोनों के विपरीत, प्रोस्टाग्लैंडिन आवश्यकता पड़ने पर शरीर में संश्लेषित होते हैं और आमतौर पर अपने उत्पादन स्थल के निकट ही कार्य करते हैं, साथ ही इनका अर्द्ध-जीवनकाल बहुत कम होता है। एस्पिरिन के काम करने के तरीके में साइक्लोऑक्सीजिनेज एंजाइमों, खास तौर पर साइक्लोऑक्सीजिनेज-1 और साइक्लोऑक्सीजिनेज-2 को हमेशा के लिए रोकना शामिल है। यह रुकावट एराकिडोनिक एसिड को प्रोस्टाग्लैंडीन और थ्रोम्बोक्सेन में बदलने से रोकती है। ये दोनों कई शारीरिक प्रक्रियाओं में शामिल होते हैं। साइक्लोऑक्सीजिनेज-1 के एक्टिव हिस्से में मौजूद एक सेरीन अवशेष को एसिटाइलेट करके, एस्पिरिन प्लेटलेट्स में थ्रोम्बोक्सेन ए-2 के बनने को रोक देती है, जिससे प्लेटलेट्स का जमा होना और खून के थक्के बनना कम हो जाता है। इसलिए हृदयाघात से पीड़ितों को एस्पिरिन की मामूली सी मात्रा नियमित तौर से लेने की सलाह दी जाती है। यह हमेशा रहने वाला असर प्लेटलेट की 7 से 10 दिनों तक की जिंदगी तक बना रहता है। एस्पिरिन द्वारा साइक्लोऑक्सीजिनेज-13 को रोकने की वजह से ही इसमें सूजन-रोधी, दर्द-निवारक और बुखार-रोधी गुण भी होते हैं। कम मात्रा में लेने पर, एस्पिरिन मुख्य रूप से प्लेटलेट्स में मौजूद साइक्लोऑक्सीजिनेज-1 पर असर डालती है, जिससे दिल की बीमारियों से सुरक्षा मिलती है, लेकिन ज्यादा मात्रा में लेने पर, यह साइक्लोऑक्सीजिनेज-2 को भी रोकती है, जिससे इसके सूजन-रोधी और दर्द-निवारक असर और भी बढ़ जाते हैं।

प्रख्यात विज्ञान पत्रिका साइंस में छपी एक स्टडी के मुताबिक, साइंटिस्ट्स ने ब्रेन की एक ऐसी प्रक्रिया को ईजाद किया है, जिससे मालूम होता है कि कुछ लोगों में क्रोनिक दर्द से डिप्रेशन क्यों होता है, लेकिन दूसरों में नहीं। ये नतीजे इस सोच को चुनौती देते हैं कि लंबे समय तक दर्द से डिप्रेशन होना तय है। जानवरों पर स्टडी के साथ-साथ इंसानों में बड़े पैमाने पर ब्रेन इमेजिंग का इस्तेमाल करके, टीम ने पाया कि लगातार दर्द हिप्पोकैंपस में धीरे-धीरे बदलाव लाता है। यह ब्रेन का एक हिस्सा जो याददाश्त में अपनी भूमिका के लिए सबसे ज्यादा जाना जाता है। ये बदलाव इस बात पर असर डालते हैं कि कोई व्यक्ति समय के साथ डिप्रेशन में जाता है या इमोशनली मजबूत रहता है।

यूनिवर्सिटी ऑफ वारविक के प्रोफेसर जियानफेंग फेंग ने बताया है कि क्रोनिक दर्द अक्सर डिप्रेशन या एंग्जायटी में बदल जाता है, लेकिन अब तक हम यह नहीं समझ पाए हैं कि ऐसा कुछ लोगों के साथ क्यों होता है और दूसरों के साथ नहीं। शोध के नतीजों से पता चलता है कि हिप्पोकैंपस एक कंट्रोल सेंटर की तरह काम करता है, जो ब्रेन को लंबे समय तक दर्द के प्रति इमोशनल रिस्पॉन्स को रेगुलेट करने में मदद करता है। डिप्रेशन होना इस बात पर निर्भर करता है कि यह सिस्टम समय के साथ कैसे रिस्पॉन्स देता है।

एडल्ट्स को प्रभावित करता क्रोनिक दर्द

क्रोनिक दर्द दुनियाभर में 20 प्रतिशत से ज्यादा एडल्ट्स को प्रभावित करता है और यह एंग्जायटी और डिप्रेशन से बहुत ज्यादा जुड़ा हुआ है, लेकिन लगातार दर्द वाले कई लोगों में ये दिक्कतें कभी नहीं होतीं और इस अंतर के पीछे के बायोलॉजिकल कारण अभी भी साफ नहीं है। इसका पता लगाने के लिए, रिसर्चर्स ने यूनाइटेड किंगडम के बायोबैंक समेत बड़े पॉपुलेशन डेटासेट से ब्रेन स्कैन की जांच की। जिन लोगों को क्रोनिक दर्द था और जिनमें डिप्रेशन नहीं हुआ, उनका हिप्पोकैंपल वॉल्यूम थोड़ा बड़ा था और इस हिस्से में एक्टिविटी ज्यादा थी। उन्होंने कुछ सीखने और याद रखने वाले कामों में भी बेहतर परफॉर्म किया, जिससे पता चलता है कि ब्रेन शुरू में लगातार दर्द के हिसाब से ढल सकता है। इसके उलट, जिन लोगों को क्रोनिक दर्द और डिप्रेशन दोनों थे, उनमें हिप्पोकैंपल वॉल्यूम कम था, एक्टिविटी में रुकावट थी और कॉग्निटिव परफॉर्मेंस खराब थी। लंबे समय के डेटा से पता चला कि ये अंतर एक साथ दिखने के बजाय धीरे-धीरे सामने आते हैं।